19 साल से सड़क पर है पूरा बलकुंडा गांव

कांख में मोटी-मोटी फाइलें दबाये शिव नंदन सिंह देखने में किसी रिटायर शिक्षक जैसे लगते हैं, मगर बलकुंडा गांव के निवासी प्यार से और दूसरे लोग उन्हें व्यंग्य भाव से नेताजी कह कर पुकारते हैं. शिव नंदन सिंह 1994 से बलकुंडा से 400 असहाय परिवारों के लिए बसेरे के इंतजाम में जुटे हैं. वे गुम हो चुके अपने गांव के लिए ठौर दिये जाने की मांग करते हुए अफसरों के दरबार में हाजिरी लगाते हैं, प्रतिनिधियों के बैठकखानों में गुहार लगाते हैं और हर महीने के चार-पांच दिन अदालत की पेशियों में गुजारते हैं. 19 साल से वे लगातार इस लड़ाई को लड़ रहे हैं. सड़क पर रह रहे गांव के लोगों से मिलने वाला पांच-पांच रुपये का चंदा ही इस लड़ाई में उनकी पूंजी है. मगर 19 साल बाद भी कोसी और बागमती नदी की धाराओं में दो-दो बार समा चुके उनके बलकुंडा गांव को ठौर नहीं मिला है.

पुष्यमित्र

फरकिया-4

> हमलोग आज तक बेघर हैं. इन सब का नतीजा यह निकला है कि हमारी नयी पीढ़ी पढ़ लिख ही नहीं पायी. गांव में कहने को स्कूल है, मगर गांव ही खतरे के पेट में है तो स्कूल में पढ़ाने कौन आयेगा?

गांव के लोगों के बीच बैठे शिव नंदन सिंह कागजात दिखाते हुए.

अपने गांव की त्रासदी का जिक्र करते हुए शिव नंदन सिंह बताते हैं कि उनका गांव तीन तरफ से नदियों से घिरा है. 1994 तक सब कुशल था, मगर उसी साल बागमती की धारा उनके गांव को बहा कर ले गयी. फरकिया के इलाके में गांव का नदियों द्वारा कट जाना कोई नयी बात नहीं. ऐसा होता रहता है और हर साल दो-एक गांव नदी के पेट में समा ही जाते हैं. ऐसे में लोग नियति को चुप-चाप स्वीकार कर दूसरे इलाके में बस जाते हैं. 20-25 साल बाद फिर से चक्र पलटता है और नदी के पेट में समाया गांव ऊपर हो जाता है और लोगों को अपना खोया हुआ गांव वापस मिल जाता है.

सामान्य नहीं है बलकुंडा का मामला

मगर चौथम प्रखंड के रोहिया पंचायत में बसा बलकुंडा गांव जो धमहरा स्टेशन से थोड़ी ही दूर शक्तिपीठ कात्यायनी स्थान के पास उस जगह बसा है जहां कोसी और बागमती की धाराएं काफी करीब आकर लगभग मिल जाती हैं. यही वह जगह है जहां 6 जून 1981 को भीषण रेल हादसा हुआ था और रेलवे पुल के नीचे कई डिब्बे गिर कर उफनती नदी के पेट में समा गये थे. मरने वालों की संख्या का सही आकलन नहीं हो सका, मगर उस जमाने के हिसाब से वह देश की भीषणतम रेल दुर्घटना मानी गयी थी. यह वह इलाका है जहां पहुंचने के लिए आज भी रेल ही एकमात्र सहारा है. लोग जान की बाजी लगाकर रेलवे के क्षतिग्रस्त पुल पर चलकर ही गांव से शहर और शहर से गांव की यात्रा करते हैं(कहानी अगले किस्त में). ऐसे में 1995-96 में एक बार फिर नये बसे गांव को कोसी नदी का हमला झेलना पड़ा और हालात ऐसे बने कि पूरे के पूरे गांव को मिट्टी की बनी सड़क पर शरण लेनी पड़ी. उस रोज से आज तक गांव के 410 में से 400 परिवार उसी सड़क पर बसे हैं. यह सड़क भी कोई मानक सड़क नहीं गांव में चलने फिरने के लिए बनी मिट्टी की डहर भर है.

1997 से जारी है प्रक्रिया

गांव के एक युवक टुनटुन राम बताते हैं कि उस वक्त सरकार की नजर में हमारी समस्या आयी तो हमें बसाने के लिए नदियों के उस पर जमीन की तलाश की गयी और 1997-98 में भूअर्जन की प्रक्रिया शुरू की गयी. मगर यह हम लोगों की बदकिस्मती थी कि यह प्रक्रिया आज तक पूरी नहीं हो पायी है. कभी भूस्वामियों की बहानेबाजी तो कभी सरकारी अधिकारियों की अड़ंगेबाजी और केस-मुकदमों की मार. हमलोग आज तक बेघर हैं. इन सब का नतीजा यह निकला है कि हमारी नयी पीढ़ी पढ़ लिख ही नहीं पायी. गांव में कहने को स्कूल है, मगर गांव ही खतरे के पेट में है तो स्कूल में पढ़ाने कौन आयेगा? छोटे-छोटे बच्चों को भीषण नदी और नरहा (बिना रेलिंग वाले) रेल पुल पर अकेले जाने के लिए कैसे छोड़ देते सो वे बाहर भी नहीं जा पाये. अस्पताल जाना हो तो चौथम गये बिना चारा नहीं, जो यहां से दस किमी दूर है. इस गांव में कभी एंबुलेंस आ ही नहीं सकता, क्योंकि उसे एक बार नरहा पुल से गुजरना पड़ेगा और एक बार साढ़े चार सौ रुपया देकर गांव से. एएनएम भी नहीं आतीं, कैसे कहें जान-जोखिम में डालकर आने. कभी-कभी पोलियो वाले जरूर आ जाते हैं. गांव में दो ही लोग नौकरी करते हैं, दोनों रेलवे में डी-ग्रुप में हैं. बांकी बचे लोगों में से जवान-जहान जून महीने तक दिल्ली और पंजाब का रास्ता पकड़ लेते हैं और महिलाएं-बच्चे और बुजुर्ग बाढ़ का सामना करने के लिए छूट जाते हैं.

जागी है उम्मीद

इन दिनों गांव के लोगों के चेहरे पर थोड़ी मुस्कुराहट नजर आने लगी है. 19 साल तक तिल-तिल कर घिसटने के बावजूद उनके पुनर्वास की प्रक्रिया किसी मुकाम तक पहुंचती नजर आ रही है. शिव नंदन सिंह बताते हैं कि कहने को तो अब कोई काम नहीं बचा है. जमीन मालिकों को जमीन का अच्छा खासा मुआवजा 20 एकड़ जमीन के लिए 2,23,64,857 रुपये अदा कर दिया गया है. यानी एक एकड़ जमीन के बदले 11 लाख रुपये से अधिक. अमीन ने हम लोगों के लिए 4-4 डिसमिल जमीन के प्लॉट का नक्शा भी बना दिया है. अब अंचलाधिकारी को आकर जमीन वितरित कर देना है. मगर अधिकारी का मन मनसना(राजी होना) इतना आसान कहां? कहते हैं मेरे पास अभिलेख ही नहीं है. 1995 से उनके दफ्तर में सारी प्रक्रिया चल रही है, इसके बावजूद अभिलेख उनके पास नहीं है तो हम क्या कह सकते हैं. खैर, हम लोगों का तो अपना काम है, अभिलेख भी जुटा कर उपलब्ध कराने की कोशिश कर रहे हैं. इधर जमीन वाले लोग पहले तो तरह-तरह की धमकी देते ही थे, अब भी नहीं छोड़ रहे. जमीन का मुआवजा लेने के बाद भी. आज ही कह रहे थे कि पांच बंदूक का दाम देना पड़ेगा गांव वालों को. अगर देना पड़ा तो देंगे. क्योंकि यहां तो वही लोग सरकार हैं, हमलोगों को उन्ही के संरक्षण में रहना है. फिर भी एक बार जमीन पर बस जायें तो समझेंगे स्वर्ग ही मिल गया.

आईएम4चेंज मीडिया फैलोशिप के तहत प्रकाशित

18 वीं और 19 वीं सदी के अंत तक भी जगह-जगह पर तालाब बन रहे थे,
लेकिन आधुनिकता के नाम पर अब यह परंपरा ही न रही.